International Recognized Double-Blind Peer Reviewed Multidisciplinary Research Journal
Golden Research Thoughts
ISSN 2231-5063 **Impact Factor :** 3.4052 **(UIF)**
Volume - 4 | Issue - 12 | June - 2015 **Available online at** www.isrj.org

बौद्ध दर्शन का आयुर्वेद पर प्रभाव : ऐतिहासिक दृष्टि से विश्लेषण

बालाजी पोटभरे
प्रभारी अनुसन्धान अधिकारी, हर्बल आयुर्वेद अनुसन्धान केंद्र, नागालैंड विश्वविद्यालय, लुमामी, नागलैंड,

Short Profile :

Balaji Potbhare is Research Officer of Ayurveda Incharge. He Has Completed BAMS , M.D. He Has Research Experience of 10 Years 6 month.

lkjk'k :

मनुष्य एक बुद्धिवान प्राणी है, तर्क के आधारपर सोचना, चिंतन करना उसकी विशेषता है। आज विज्ञान और तकनीकी के दुनिया में मानने से ज्यादा जानने को महत्व दिया जाता है।आज के विज्ञान के युग में यह नितान्त आवश्यक है कि आयुर्वेद का अध्ययन,अनुसन्धान ऐतिहासिक, पुरातत्वीय, भाषाएँ, दार्शनिक, धार्मिक एवं अध्यात्मिक दृष्टियों से होना चाहिए ।यह जानना जरुरी है कि आयुर्वेद के उत्पत्ति के समय हजारों वर्ष पहले भारत देश में कैसी सामजिक, भौगोलिक परिस्थितियाँ थी, कौन सी जनभाषा थी, कौन से दार्शनिक सम्प्रदाय थे और उनका किस तरह से एक दूसरे पर प्रभाव था।प्राचीन भारतीय चिकित्सा पद्धति, जो 'आयुर्वेद' के नाम से प्रसिद्ध है, उसकी उत्पत्ति सृष्टि के उत्पत्ति के साथ ब्रह्मा ने की ऐसा मानते है।इस शोध प्रबन्ध में यह स्पष्ट किया हैकि आयुर्वेद के विद्वान आचार्यों में, आयुर्वेद को गौतम बुद्ध के समय((563-483 ई. पू.) से पहले की रचना है, यह सिद्ध करने की होड़ मची है। आखिर इसका कारण क्या है? इसका संक्षिप्त में विश्लेषण ऐतिहासिक दुष्टि से इस लेख में किया गया है।

प्रस्तावना :

"भारतीय संस्कृति के आधारभूत ग्रन्थ वेद है । 'विद्' धातु से करण और अधिकरण अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय होने पर 'वेद' शब्द बनता है । विद् धातु के चार अर्थ है – विद् ज्ञाने, विद्लृ लाभे , विद् सत्तायाम् , विद् विचारणे । अतः जिसके अध्ययन से अथवा जिसमें यथार्थ विद्या का ज्ञान होता है, समस्त सुखों का लाभ होता है, सत्य –असत्य का विचार होता है तथा जिसमें मनुष्य विद्वान होते है , उसे वेद कहते है ।"[1] वेदों की संख्या चार मानी गई हैऔर उनके चार उपवेद मानते हैजैसे –

वेद	उपवेद
1. ऋग्वेद ----------	धनुर्वेद
2. यजुर्वेद ----------	स्थापत्यवेद
3. सामवेद ----------	गान्धर्ववेद
4. अथर्ववेद ----------	आयुर्वेद

डॉ.ब्रह्मानंद त्रिपाठी ने चरकसंहिता के प्रस्तावना में कहा है "आयुर्वेद मानव – सृष्टि के आरम्भ से ही प्रादुर्भूत हुआ माना जाता है, किन्तु यूरोपीय इतिहासकारों ने आज से तीन – चार हजार वर्ष के पूर्व में भारत के अन्दर चिकित्साशास्त्र समुन्नत था , ऐसा स्वीकृत किया है ।आयुर्वेद अथर्वेद का उपांग है, इस तथ्य को समस्त सुधी समाज समान रूप से स्वीकार करता है। केवल 'चरणव्यूह' में उसको ऋग्वेद का उपांग कहा गया है।" [2]

चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता और अष्टांगसंग्रह को आयुर्वेद में बृहत्रयी कहा जाता हैं, जो आयुर्वेद के प्रधान आकर ग्रन्थ हैऔर उसमें भी चरकसंहिता का स्थान निर्विवादरूप से उच्चतम है ।

"अग्निवेशतन्त्र पर चरक ने भाष्य ने लिखा तदनन्तर वह संग्रहयुक्त भाष्य चरकसंहिता नाम से विख्यात हुआ । कुछ समय बीतने के बाद दृढ़बल ने इसका प्रतिसंस्कार किया ।"[3]

आयुर्वेद को चिकित्साशास्त्र के साथ साथ एक दर्शन भी माना जाता है।"दर्शन' शब्द 'दृश' धातु से बना हैजिसका अर्थ है'जिसके द्वारा देखा जाय' । भारत में दर्शन उस विद्या को कहा जाता हैजिसके द्वारा तत्व का साक्षात्कार हो सके ।"[4] भारतीय दर्शन के दो मुख्य भेद है– आस्तिक और नास्तिक दर्शन । आस्तिक दर्शनों में षड्दर्शन (सांख्य ,योग,वैशेषिक,न्याय,पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा) हैऔर नास्तिक दर्शनों में चार्वाक, जैन और बौद्ध दर्शन हैं। आयुर्वेद के मौलिक सिद्धान्त इन्हीं भारतीय दर्शनों पर आधारित है।डॉ.ब्रह्मानंद त्रिपाठी ने चरकसंहिता में स्पष्टता के साथ कहा है"प्राचीन चिकित्सा – साहित्य के अध्ययन के पूर्व जिज्ञासुओं को व्याकरण, षड्दर्शन साहित्य का भली प्रकार अध्ययन – परिशीलन आवश्यक होता है, अन्यथा इन संहिता ग्रंथों के बहुर्थ गुम्फित सूत्रों का सही भावार्थ उपलब्ध नहीं हो पाता।"[5]

दर्शन के सम्बन्ध में पण्डित राहुल सांकृत्यायन ने कहा है, "यद्यपि एक से देश या काल में मानव प्रगति की समानता का कोई नियम नहीं है, तो भी यहाँ कुछ बातों में हिन्दी यूरोपीय जातीय दोनों

शाखाओं – यूनानियों और हिन्दियों को हम दर्शन क्षेत्र में एक समय प्रगति करते देख रहे है; यद्यपि यह प्रगति आगे विषम गति पकड़ लेती है। हाँ , एक विशेषता है, कि समय बीतने के साथ हिन्दी आर्यों की सामजिक प्रगति रुक गयी , जिससे उनके समाज शरीर को सुखंडी मार गई । इसका यदि कोई महत्व हैतो यह कि उनका समाज फोसील बन गया , आज वह चार हजार वर्ष तक की पुरानी बेवकूफियोंका एक अच्छा म्यूजियम है, जब कि यूनान समाज परिस्थिति के अनुसार बदलता रहा – आज जहाँ नव्य शिक्षित भारतीय भी वेद और उपनिषद के ऋषियों को ही अनन्तकाल तक के लिए दार्शनिक तत्वों को सोचकर पहिले से रख देनेवाला समझते है; वहाँ आधुनिक यूरोपीय विद्वान अफलातूँ और अरस्तु को दर्शन की प्रथम और महत्वपूर्ण ईटें रखनेवाले समझते हुए भी आज की दर्शन विचारधारा के सामने उनकी विचारधारा को आरंभिक ही समझता है।"[6]

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व :

आजकल आयुर्वेद के विद्वान् आचार्यों के विचारों में, आयुर्वेद के इतिहास और अनुसन्धान के प्रति मतभिन्नता दिखलाई देती हैं, लेकिन यह एक आश्चर्य की बात हैकि,उनके विचारों में सादृश्यता केवल इसी सन्दर्भ में मिलती हैं, उनका मानना है कि आयुर्वेद की रचना भगवान बुद्ध से पहले हुई है और वे केवल ग्रन्थों के सहारे सिद्ध करते हैकि, चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता का काल भी भगवान बुद्ध से पहले का ही है।आखिर इसका कारण क्या है?कहीं ये बुद्ध की शिक्षा पर हमला तो नहीं ? यह भी एक सत्य हैकि, "प्राचीन इतिहास अभी तक मुख्यतः देशी या विदेशी साहित्यिक स्रोतों के आधार पर ही रचा गया है।सिक्कों और अभिलेखों की कुछ भूमिका अवश्य रही हैं, किन्तु अधिक महत्व ग्रन्थों को ही दिया गया है। पौराणिक अनुश्रुतियों की अपेक्षा अभिलेख निश्चय ही अधिक विश्वसनीय है।"[7]इस तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि केवल ग्रन्थों को ही श्रद्धा से प्रमाण मानने की अपेक्षा पुरातत्वीय, अभिलेखों की साक्ष्य अधिक विश्वसनीय होती हैं, क्योंकि श्रद्धा से सिद्धान्तों की उत्पत्ति नहीं हो सकती ।

साहित्य सर्वेक्षण : चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, अष्टांगसंग्रह, अष्टांगहृदय और बौद्ध धर्म के सन्दर्भ में विभिन्न भाष्यों ,टीकाओं, शोध प्रबंध, वर्तमान पत्र,व्याख्याओं का सर्वेक्षण ।

शोध के उद्देश्य :

1.बौद्ध दर्शन का आयुर्वेद पर प्रभाव किस तरह से पड़ा है, उसका ऐतिहासिक दृष्टिकोण से संक्षिप्त में विश्लेषण करना ।

2.आज के वैज्ञानिक युग में आयुर्वेद का अध्ययन, अनुसन्धान ऐतिहासिक, पुरातत्वीय, भाषाओं, दार्शनिक, धार्मिक, अध्यात्मिक दृष्टियों से हों, इसका महत्व संक्षिप्त में स्पष्ट करना ।

ऐतिहासिक दृष्टि से विवेचन:

ऐतिहासिक दृष्टि से सिद्ध हैकि "अथर्ववेद सबसे पीछे का वेद है। बुद्ध के वक्त (563 – 483 ई. पू.) तक वेद तीन ही माने जाते थे। सुपठित पंडित ब्राह्मण को उस वक्त 'तीनों वेदों का पारंगत' कहा जाता था।अथर्ववेद 'मारन – मोहन – उच्चाटन' जैसे तंत्र – मंत्र का वेद है। वेद – संहिताएं उठाइए , ब्राह्मणों को देखिए, कहीं अनार्य – धार्मिक रीति – रिवाजों को लेने या समन्वय का प्रयास नहीं मिलता --- इसका अपवाद यदि हैतो अथर्ववेद ; बुद्ध के समकालीन उपनिषदों में इसका नाम तो आता हैं, किन्तु तीनों वेदों के बाद बिना वेद – विशेषण के –अथर्ववेद नहीं आथर्वण या अथर्वांगिरस के नाम से, तो भी अथर्ववेद निम्न तलपर आर्य – अनार्य धर्मों –मंत्र – तं , टोने – टोटकों – के मिश्रण का प्रथम प्रयत्न है।"[8] "बौद्ध दर्शन का प्रभाव अथर्ववेद के प्रश्न और मुण्डक उपनिषद् पर दिखलाई देता है।"[9]

उपरोक्त तथ्यों से यह सिद्ध होता है कि आयुर्वेद जो अथर्ववेद का उपवेद हैं, उसकी रचना बुद्ध के पश्चात हुई है।

कविराज डॉ. अम्बिकादत्त शास्त्री ने सुश्रुतसंहिता के प्रथम अध्याय में आयुर्वेद उत्पत्ति के सन्दर्भ में कहा हैकि, "आयुर्वेद आयु के हित , अहित द्रव्यगुणकर्मों का प्रतिपादक विज्ञान (Science of Life) हैऔर विज्ञान की उत्पत्ति न होकर स्मृति ही हुआ करती है| वर्तमान में जितने भी आविष्कार हो रहे हैवे सब रान्त्रन्दिव अन्वेषण (Research)की धुन में लगी हुई उच्च आत्माओं की स्मृति स्वरुप है अतएव चरक में स्पष्ट कहा हैकि ' ब्रह्मा स्मृत्वाऽऽयुषो वेदम' ब्रह्मा ने आयुर्वेद का स्मरण किया, इसलिए वेदों को अपौरुषेय (कर्त्तृरहित) माना गया है। जबकि पाश्चात्य देश अज्ञानरूपी निद्रा में थे उस समय भारतवर्ष के चिकित्साविज्ञान , गणितविज्ञान , अस्त्र – शस्त्र द्वारा युद्धकलाविज्ञान , शिल्पविज्ञान और दार्शनिक विज्ञान उन्नत शिखर पर थे । समस्त संसार को ज्ञान प्रकाश देने का गौरव इसी परम पुनीत आर्यावर्त को हैअतएव हम निःशङ्क तथा साभिमान इसे जगद्गुरु घोषित करते है।"[10]

वेदों को अपौरुषेय (कर्त्तृरहित) मानने के सन्दर्भ में पण्डित राहुल सांकृत्यायन ने कहा हैं, "मीमांसा दर्शन का मुख्य प्रयोजन था पुरोहितों की आमदनी को सुरक्षित करना । दक्षिणा उन्हें तभी मिल सकती थी, यदि लोग वैदिक कर्मकांड को मानें, वैदिक कर्मकांड तब यजमानों को प्रिय हो सकता था, जब कि उन्हें विश्वास हो कि यज्ञ का अच्छा फल – स्वर्ग जरुर मिलेगा | इस विश्वास के लिए कोई पक्का प्रमाण चाहिए, जिसके लिए मीमांसकों ने वेद को पेश किया । उन्होंने कहा – वेद अनादि है, वह किसी देवता या मानुष के नहीं बनाए – अपौरुषेय – है। पुरुष के वचन में गलती का डर रहता हैं, क्योंकि उसमें राग – द्वेष है, जिसकी प्रेरणा से वह गलत बात भी मुँह से निकाल सकता है। वेद यदि बना होता तो उसके कर्ताओं का नाम सुना जाता, कर्ता की याद तक न रहनी यही सिद्ध

करती हैकि वेद अकृत है| वेद अनादि हैं, क्योंकि उन्हें हर एक वेदपाठिने अपने गुरु से पड़ा हैं, और इस प्रकार वह गुरु – शिष्य की परंपरा कभी नहीं टूटती । वेद मंत्रों में भरद्वाज, वशिष्ठ, कुशिक आदि ऋषियों; दीवोदास, सुदास,आदि राजाओं के नाम आते है| जैमिनी मंत्र (=संहिता) और ब्राह्मण दोनों को वेद मानता है। उसने और सैकड़ों ऐतिहासिक नामों की व्याख्या के फंदे में फँसने के डर से दयानंद की भाँति ब्राह्मण को वेद से ख़ारिज नहीं किया । जैमिनी को वेद की स्वतःप्रमाणता सिद्ध कर यज्ञ कर्मकांड का रास्ता साफ़ करना था । उसने ईश्वर – सिद्धि के बखेड़े में पड़ने से वेद को नित्य अनादि सिद्ध करना आसान समझा और इतिहास के सम्बन्ध में उस वक्त जितना अज्ञान था, उससे यह बात आसान भी थी ।"[11]

डॉ. ब्रह्मानंद त्रिपाठी ने चरकसंहिता के प्रस्तावना में लिखा है, "ऐतिहासिकों का सुनिश्चित मत हैकि, भगवान बुद्ध के आविर्भाव से पहले वैदिक वाङ् मय की संरचना पूर्ण हो चुकी थी | विदेशीय विद्वान विंटरनित्ज का मत हैकि वेदों का समय २००० अथवा २५०० ई. पू. से ७५० ई. पूर्व के लगभग होना चाहिए । इस गणना के अनुसार उपनिषदों का समय १००० ई. पूर्व स्थिर किया जाता हैऔर यही समय आचार्य अग्निवेश का भी स्वीकार किया जाता है।"[12] वैद्य यदुनन्दन उपाध्याय ने अष्टांगहृदय के प्रस्तावना में लिखा हैं, "आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व भारतीय आयुर्वेद अत्यन्त विकसित था ।तब तक अनेक विदेशीय विद्वान यहाँ आकर आयुर्वेद का अध्ययन करते रहें तथा हमारे देश के अनेक विद्वान विदेशों भी सम्मानपूर्वक अध्यापन कार्य में संलग्न रहे । समय - समय पर वे विदेशी विद्वानों के भी उपयोगी अनुभवों का अपने ग्रंथो में समावेश कर भारतीय आयुर्वेद को सुपुष्ट करने में संकुचित न होते थे । द्वीपान्तर वचा, पारसिक यवानिका, रुमीमस्तगी आदि द्रव्यों का आयुर्वेदीय ग्रंथों में समावेश इसका दृढ़ प्रमाण है।इस प्रकार ज्ञान का आदान – प्रदान करते हुए हमारे देश के विद्वान आयुर्वेद शास्त्र के परिबृंहन में सतत प्रयत्नशील रहे । प्राचीन संहिताओं में वर्णित अनेक सिद्धतम विधियों एवं सिद्धान्तों के साथ उन विषयों का भी परिशीलन अधिक परिश्रम और दृढ़ता के साथ करें जो आज हमारी अल्पज्ञतावश अस्पष्ट या असंगत प्रतीत हो रही हों , एवं इनको कपोलकल्पना आदि समझने का भार उन्ही पर रहने दे, जिनका आधुनिक विकासवाद में विश्वास हैऔर जो अपने को बन्दरों की औलाद तथा मूर्खों की सन्तान समझने में ही गर्व का अनुभव करते है|दैवदुर्विपाक से हमारे देश में भी पारस्परिक ईर्ष्या- द्वेषजनित कलहों और देश पर हुए विदेशियों के आक्रमणें से अनेक राजनीतिक एवं सामजिक परिवर्तन हुए तथा पूर्वोक्त परस्परानुग्रह और आदान-प्रदानपूर्वक ज्ञान विज्ञान के उन्नतिपथ में अवरोध ही नहीं , अपितु उनका ह्रास होना आरम्भ हुआ । नवीन अनुसन्धानों का होना तो दूर रहा , प्राचीन ज्ञान का भी गोपन होने लगा । अनेक ग्रन्थरत्न चोरी हो गए और लूटे गए ।"[13]

उपरोक्त वक्तव्य में ऐतिहासिकों का यह सुनिश्चित मत किस आधार पर बना है कि गौतम बुद्ध के आविर्भाव से पहले वैदिक वाङ् मय की संरचना पूर्ण हो चुकी थी, यह स्पष्ट नहीं होता है। "कुछ लोगों की यह धारणा है कि सारा संस्कृत वाङमय पालि वाङमय की अपेक्षा प्राचीन है। ऐसे बहुत ही थोड़े ग्रन्थ हैजिन्हें बुद्ध पूर्व माना जा सकता हैं। अबौद्ध परम्परा के छह

शास्त्रों(सांख्य,योग,न्याय,वैशेषिक,पूर्व मीमांसाऔर उत्तर मीमांसा) में एक भी शास्त्र ऐसा नहीं जिसे बुद्धपूर्व प्रमाणित किया जा सके । वाल्मीकि की रामायण भी बुद्धोतर कालीन है, व्यास का महाभारत भी बुद्धोतर कालीन हैऔर अज्ञात नामा लेखक की श्रीमद भगवद्गीता भी बुद्धोतर कालीन है।"[14] और "निष्पक्षभाव से बुद्धवाणी पढ़ोगे और अपने हिन्दू शास्त्रों का भी निष्पक्षभाव से अध्ययन करोगे तभी तुम्हें ज्ञात होगा कि गीता ही नहीं , बहुत पुरातन माने जानेवाले अनेक हिन्दू ग्रन्थ बुद्ध के बाद लिखे गए है, और उन पर बुद्ध की शिक्षा का गहरा प्रभाव है ।"[15]

आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व भारतीय आयुर्वेद अत्यन्त विकसित था, यह कथन भी आधारहीन प्रतीत होता है। पण्डित राहुल सांकृत्यायन ने कहा हैं, "3000-2600 ई. पू. मानव – जातिके बौद्धिक जीवन के उत्कर्ष नहीं अपकर्ष का समय है; इन सदियों में मानव ने बहुत कम नए आविष्कार किए ।पहले की दो सहस्त्राब्दियों के कड़े मानसिक श्रम के बाद 1000 – 700 ई. पू. में, जान पडता है, मानव – मस्तिष्क पूर्ण विश्राम लेना चाहता था, और इसी स्वप्नावस्था की उपज दर्शन हैं; और इस तरह का प्रारम्भ निश्चय ही हमारे दिल में उसकी इज्जत को बढाता नहीं, घटाता है। दर्शन का सुवर्णयुग 700 ई. पू. से बाद की तीन चार शताब्दियाँ हैं, इसी वक्त भारत में उपनिषद से लेकर बुद्ध तक के, और यूरोप में थेलसे लेकर अरस्तु तक के दर्शनों का निर्माण होता है| यह दोनों दर्शन धाराएँ आपस में मिलकर विश्व की सारी दर्शन – धाराओं का उद्गम बनती है। दर्शन क्षेत्र में राष्ट्रीयता की तान छेड़नेवाला खुद धोखे में हैऔर दूसरों को धोखेमें डालना चाहता है। और आगे कहते हैं, 'दर्शन का अस्तित्व तो पहले युग में था ही नहीं, और दूसरे युग में वह एक बुढा बुजुर्ग हैं, जो अपने दिन बिता चूका हैं; बुढा होने से उसकी इज्जत की जाती जरुर हैं, किन्तु उसकी बात की ओर लोगों का ध्यान तभी खींचता हैं, जब कि वह प्रयोग-आश्रित चिन्तन – सायन्स का पल्ला पकडता है। यद्यपि इस बात को सर राधाकृष्णन जैसे पुराने ढरेंके 'धर्म – प्रचारक' मानने के लिए तैयार नहीं हैं, उनका कहना है–'प्राचीन भारत में दर्शन किसी भी दूसरी सायन्स या कला का लग्गू – भग्गू न हो, सदा एक स्वतंत्र स्थान रखता है।' भारतीय दर्शन सायन्स या कला का लग्गू – भग्गू न रहा हो, किन्तु धर्म का लग्गू – भग्गू तो वह सदा से चला आता हैं, और धर्म की गुलामी से बदतर गुलामी और क्या हो सकती है?"[16]

डॉ. ब्रह्मानंद त्रिपाठी ने चरकसंहिता के प्रस्तावना में लिखा हैं, "आज के इतिहासज्ञ अवसरोचित तथ्यों का ग्रहण कर शेष विषय का अपलाप कर जाते है| कीथ ने अपने संस्कृत – साहित्य के इतिहास में जनसाधारणोपयोगी संस्कृत शब्दों का निर्देश करके बिना किसी भारतीय विद्वान के दबाव में आये यह स्वीकार किया हैकि पाणिनि के समय में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी | इसके विपरीत भारतीय विद्वान अभी तक यही लिखते आ रहे हैकि संस्कृत भाषा कभी बोलचाल के रूप में व्यवहार में आनेवाली भाषा नहीं थी ।"[17]

पाणिनि के समय में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी यह कथन निम्न दिए हुए तथ्यों से आधारहीन, बेबुनियाद, असत्य प्रतीत होता है।

"संस्कृत सीखने, सुनने या बोलने का अधिकार शुद्र और स्त्रियों को कभी भी नहीं था ।
लोकायतं कुतर्क च प्राकृतं म्लेंच्छभाषितम ।
न श्रोतव्यं द्विजेनैतत् अधो नयति तद द्विजम ||(गरुड़पुराण)

लोकायत (चार्वाक अनुयायी), कुतर्क करनेवाले और म्लेंच्छ इनकी प्राकृत भाषा ब्राह्मणों ने सुनने योग्य नहीं हैं, वह ब्राह्मणों के अधोगति ले जानेवाली होती है।"[18] "तीर्थंकर महावीर और तथागत गौतम बुद्ध इनका समय ईसा पूर्व छठी शताब्दी था । महावीर ने अपने धर्म का उपदेश अर्धमागधी भाषा में दिया तो गौतम बुद्ध ने मागधी (पालि) भाषा में दिया | धर्मप्रचार के लिए उन्होंने जनभाषा का इस्तेमाल किया।"[19] ज्ञानकोशकार श्री केतकर ने कहा था – "प्राकृत साहित्य का विकास स्वतंत्रदृष्टी से हो गया, और संस्कृत साहित्य प्राकृत के आश्रय से वर्धित हो गया ।"[20] सिन्धु संस्कृति के जानकार श्री. सदार इन्होंने अपने 'सिन्धु घाटी सभ्यता का इतिहास' में लिखा है---- "पाणिनि ने वैदिक भाषा को पूरी तरह नियमबद्ध कर संस्कृत नाम की भाषा को जन्म दिया, आगे चलकर यही भाषा पाणिनीय संस्कृत या क्लासिकल संस्कृत कहलाई । संस्कृत में साहित्य निर्मिति की बाढ़ इसी समय से आई क्योंकि प्राकृत के ग्रन्थ उन्हीं व्यक्तियों के हाथों में थे जो अब पाणिनि के संस्कृत का प्रयोग कर रहे थे । सब प्राकृत ग्रन्थ जल्द ही संस्कृत में अनुवादित हो गए और प्राकृत ग्रन्थ बाद में नष्ट भी कर दिए ।"[21] प्रसिद्ध इतिहास संशोधक और बुद्धिस्ट इंडिया किताब के लेखक प्रा. राईस डेव्हीड्स ने बौद्धकालीन भारत देश के सन्दर्भ में लिखा है--- "तक्षशिला से लेकर चम्पातक कोई भी संस्कृत में नहीं बोल रहा था, सब तरफ एक ही प्रकार की पालि भाषा बोली जा रही थी ।"[22] 'द डायन्यमिक ब्राह्मिन ' इस किताब के लेखक बी. एन . नायर लिखते है---"संस्कृत यह कभी भी जनभाषा नहीं थी, वह केवल प्राकृत भाषा का संस्कारित रूप है।"[23]

"संस्कृत भाषा प्राकृत भाषा से प्राचीन होने का कोई भी पुरातत्वीय सबूत उपलब्ध नहीं है।वेदों की भाषा संस्कृत नहीं हैं, वह तो छान्दस है। सच कहा जाए तो संस्कृत को ज्ञानभाषा कहने के बजाय उसे ज्ञान छुपानेवाली भाषा कहना ज्यादा उचित होगा ।भारत देश का सच्चा इतिहास जानना हो तो हमें मागधी, अर्धमागधी, शौरसेनी, मराठी, तमिल, कन्नड़,यें भाषाएँ और ब्राह्मी, खरोष्ट्री लिपियों का ज्ञान होना आवश्यक है।"[24]

डॉ. ब्रह्मानंद त्रिपाठी ने चरकसंहिता के प्रस्तावना में लिखा है, "उपलब्ध चरकसंहिता महर्षि चरक द्वारा प्रतिसंस्कृत कृति हैकिन्तु इसमें अग्निवेश और दृढ़बल का महत्वपूर्ण एवं अविस्मरणीय योगदान रहा है। इस समय बुद्ध का आविर्भाव हो चूका था परन्तु चरक इससे पूर्णतः प्रभावित नहीं

थे । यद्यपि चरक में कहीं – कहीं बौद्ध दर्शन प्रतिक रूप में दृष्टीगोचर होता हैतथापि उसमें देवता , गो , ब्राह्मण ,आचार्य , गुरु तथा वृद्धजनों की पूजा का विधान विविध प्रसंगों में प्राप्त होता है। इसमें बौद्ध – सम्प्रदाय में प्रचलित देवी , देवताओं को उद्धृत नहीं किया गया है।"[25]

उपरोक्त वक्तव्य के सन्दर्भ में कह सकते है कि अग्निवेशतन्त्र को ही चरकसंहिता कहते हैं, लेकिन इसका कोई आधारभूत प्रमाण नहीं हैं, जिससे सिद्ध हो कि आचार्य अग्निवेश तथागत बुद्ध के पूर्ववर्ती थे । आचार्य दृढ़बल काल चौथी शताब्दी माना जाता हैऔर आचार्य चरक (ई. 2 री शती) तो भारत के महान बौद्ध सम्राट कनिष्क के राजवैद्य थे । पण्डित राहुल सांकृत्यायन ने कहा है कि आचार्य चरक "एक परिष्कृत आयुर्वेद का सम्पादन करते है। बौद्ध सभा बुला अपने त्रिपिटक पर नए भाष्य (=विभाषा) तैयार करवाते है। उनके दर्शन में विज्ञानवाद , शून्यवाद , बाह्यार्थवाद (=सौत्रान्तिक) और सर्वार्थवाद की दार्शनिक धाराएं स्पष्ट होने लगती है। लेकिन इस वक्त की कृतियाँ इतनी ठोस न थी, कि काल के थपडों से बच रहती, न वह इतनी लोकोत्तर थी कि धार्मिक लोग बड़ी चेष्टा के साथ उन्हें सुरक्षित रखते ।"[26] डॉ. मीना तालीम ने उनके साइंस ऑफ़ मेडिसिन एंड सर्जरी इन बुद्धिस्ट इंडिया में लिखा है, "पालि त्रिपिटक (बौद्ध साहित्य) और मिलिन्दप्रश्न (बौद्ध ग्रन्थ)इनकी रचना चरकसंहिता और सुश्रुतसंहिता के पहले हुई हैऔर यही सबसे पुरातन साहित्य हैं, जो प्राचीन भारतीय चिकित्सा पद्धति और शस्त्रकर्म के बारें में जानकारी देते है और बौद्ध धर्म का आयुर्वेद पर प्रभाव स्पष्टता से दृष्टिगोचर होता है।"[27]

डॉ.अम्बिकादत्त शास्त्री ने सुश्रुतसंहिता के प्राक्कथन में कहा है, "अशोक राजा के पोते के समय बौद्ध धर्म के साथ भारतीय आयुर्वेद भी सिंहल द्वीप में पहुंचा था । भारतीय आयुर्वेद विशेष कर बहुत सी वाग्भट की टिकाएँ आज भी तिब्बत में अनूदित हुई मिलती है। सुश्रुत का समय निश्चित करने के लिए कोई ठीक साधन नहीं हैतथापि आधुनिक पुराणशास्त्रविदों का यह मत हैकि—सुश्रुत का काल ख्रिसपूर्व एक हजार वर्ष से कम नहीं है। संहिताकाल और व्याख्याकाल के पीछे विक्रम की इस बींसवी शताब्दी से संस्कृत भाषा के पठन- पाठन का दिन प्रतिदिन ह्रास होने से आर्षग्रंथों के मूल अर्थ को तथा प्राचीन व्याख्याकारों के संस्कृत में स्पष्ट किये हुए भावों को भी ठीक – ठीक समझनेवाले वैद्यों की संख्या वैद्यसमाज में दिन प्रतिदिन घट रही है। अतएव वर्तमान समय में अल्पसंस्कृतज्ञ तथा संस्कृतानभिज्ञ वैद्यों एवं विद्यार्थियों के लिए भाषानुवाद करने की प्रवृत्ति आरम्भ हुई । यह अत्यन्त दुःख की बात हैकि सुश्रुत के हिन्दी, बंगला , मराठी , गुजराती जितने भी भाषाओं में अनुवाद हुए है, कुछ को छोडकर अधिकतर ऐसे ही हैजिनसे संस्कृत टीकाओं का गूढार्थ समझना तो दूर रहा अपितु मूलग्रन्थ का आशय भी ठीक –ठीक समझना कठिन है। इसका कारण उन टीकाकारों का गुरुमुख से आयुर्वेद – अध्ययन का अभाव , संस्कृतपाण्डित्य का अभाव या संस्कृतज्ञ हो तो आधुनिक चिकित्साज्ञान में शून्यता आदि हो सकते है। "[28]

डॉ.अम्बिकादत्तशास्त्री के उपरोक्त कथन पर यही कह सकते हैकि, भारत देश के इतिहास के बारें में सत्य जानकारी रखनेवाले जानते हैकि सम्राट अशोक की बेटी संघमित्रा बोधिवृक्ष का पौधा लेकर बौद्ध धर्म का प्रसार करने के लिए सिंहल द्वीप के अनुराधपुर में पहुँच गयी थी और उन्होंने

अपने साथ बौद्ध साहित्य भी लेकर गयी थी । क्या बौद्ध साहित्य को ही आयुर्वेद मानने की चेष्टा तो नहीं हो रहीं है? 'अशोक राजा के पोते के समय बौद्ध धर्म के साथ भारतीय आयुर्वेद भी सिंहल द्वीप में पहुंचा था' यह वक्तव्य क्या मिथ्याज्ञान नहीं हो सकता ? और भारतीय आयुर्वेद विशेष कर बहुत सी वाग्भट की टिकाएँ आज भी तिब्बत में अनूदित हुई मिलती हैं, यह कथन क्या दर्शाता है? बौद्ध चिकित्सा पद्धति को ही आयुर्वेद मानने की कोशिश सदियों से हो रही है। बौद्धों का भिक्षुसंघ चिकित्साकर्म करने के लिए एक प्रयोगशाला की तरह काम कर रहा था, जिसमें स्वयं तथागत "बुद्ध अध्यात्म क्षेत्र के महाभिषक थे, महावैद्य थे, विचक्षण चिकित्सक थे ।"[29] और उनके साथ प्रसिद्ध बौद्ध चिकित्सक आचार्य जीवक था तथा यह भी ध्यान देने योग्य बात हैकि भिक्षुणियों का भी संघ था,जो स्त्रीरोगों की चिकित्सा करने के लिए एक प्रयोगशाला की तरह काम कर रहा था । हिन्दू धर्म में स्त्रियों का क्या स्थान था, यह सभी अच्छी तरह से जानते है। आयुर्वेद में बीस (२०) योनिव्यापदों (स्त्रीरोगों के नाम) का वर्णन आया हैं, चरकसंहिता चिकित्सास्थान अध्याय ३० में, क्या इससे यह प्रतीत नहीं होता कि जिसे हम आयुर्वेद कहते हैं,उसमें तो बौद्ध साहित्य ही है। डॉ. म. एस.वलिथान ने अपने आयुर्वेदिक इनहेरिटेंस ऑफ़ इंडिया इस व्याख्यान में कहा हैं, "Spread of Ayurveda all over India, after all it was Buddhist texts."[30] आचार्य वाग्भट तो बौद्ध था, यह सत्य हैजिसे कविराज अत्रिदेव गुप्त ने श्रीमदवाग्भटविरचित अष्टांगसंग्रह में स्वीकार करते हुए स्पष्टता के साथ कहा हैं, "आचार्य वाग्भट बौद्ध था यह बात सूर्य की तरह स्पष्ट है । उसको ब्राह्मण या वेदवादी सिद्ध करने में युक्तियों की अपेक्षा मानसिक आग्रह ही मुख्य कारण है । कुछ लोगों की मान्यता है की ब्राह्मण या वेदवादी के बिना दूसरे व्यक्ति अच्छे काम नहीं कर सकते । परन्तु वास्तव में यह बात नहीं है, ब्राह्मणेतर वर्णोंने तथा वैदिक धर्म से भिन्न धर्मोवालोंने भी चिकित्सा में दर्शन में तथा दूसरे विषयों में बहुत काम किया, उनका दिया ज्ञान आज भी इस देश की अमूल्य निधि है। इसलिये ब्राह्मण या वेदमतानुयायी न होने पर भी यदि वाग्भट ने यह अमूल्य ग्रन्थ बनाया हो, तो कोई नुकसान नहीं । अष्टांगसंग्रह या अष्टांगहृदय देखा जाए तो बौद्धधर्म के विचार जितनी अधिकता से इनमें मिलते है, उतने वैदिधर्म के नहीं मिलते है |वैदिक धर्म के जो थोडे से विचार है, वे उसी प्रकार है, जिसप्रकार की माघ या नैषधमें आयुर्वेद या चिकित्सा के एक दो सिद्धांत देखकर उनको आयुर्वेद का पंडित मानना है ।वास्तव में उसे वैदिक मंत्र तथा वैदिक विचार देने आवश्यक थे । क्योंकि उसने प्रत्येक अध्याय के प्रारंभ में प्रतिज्ञा की है 'इति ह स्माह भगवान आत्रेयः' इसलिए आत्रेय के वचनों को देना आवश्यक है | परन्तु साथ ही बौद्धों के लिए (अपने धर्मवालों के लिए) भी अलग मंत्र दिया है । यथा – वमनविरेचन विधि (सू.अ.२७ में) चरक के कल्पस्थान में दिए 'ब्रह्मदक्षाश्वी' आदि मंत्र को देकर ' नमो भगवते भैषजगुरवे' आदि में अर्हत के लिए नमस्कार किया है । इसके सिवाय धारिणी, तारा , अवलोकितेश्वर , सौगतों की चार प्रकार की मृत्यु, बौद्धों के दशकर्म ये सब ग्रंथकर्ता को बौद्ध सिद्ध करने के लिए पुष्ट प्रमाण है ।

1.दशकर्मपथान् रक्षन् जयन्नाभ्यन्तरानरीन् । अ. सं. सू. अ.3/116

2. ततश्चार्यावलोकितेश्वरमार्यताराब्रह्मदक्ष.

3. नमः चक्षुपरिशोधनराजाय तथा गतायार्हते सम्यक् सम्बुद्धाय.

4. आर्यवलोकितं नाथमार्यताराम.

5. जिनजिनसुततताराभास्कराराधनानी.

6. दुतादीविज्ञानीयमें 108 मंगल गिनते हुए मनिभद्रका नाम है ।

इतना ही नहीं अश्वघोष के दिए दीपका उदहारण ठीक रूप में वाग्भट ने संग्रह में दिया है । अश्वघोष का श्लोक --- दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम् ।
दिशं न कांचिद् विदशं न कांचिद् स्नेहक्षयात् केवलमेति शांतिम् ।।

अश्वघोष बौद्ध था, संस्कृत का उच्च कवि था, सौदरानंद महाकाव्य, बुद्धचरित उसकी उत्तम रचनायें है । उसी का उदहारण इस ग्रन्थ में पुरे रूप में लिया है । इसलिये वाग्भट को वैदिक धर्मावलम्बी और ब्राह्मण सिद्ध करना एक हठ मात्र है, इसे करनेवाले प्रायः ब्राह्मण है | वे नहीं चाहते की ऐसी उत्तम पुस्तक लिखनेवाले को अपने धर्म या वर्ण से बाहर जाने दे । दूसरे धर्मवालों को श्रेय मिले यह उनकी प्रतिष्ठा का बाधक है । परन्तु माननीय श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य, पराड़करजी, श्री रुद्रदेव दासजी उदारचेता स्पष्टरूपमें सत्य और न्याय के आधार पर उसे बौद्ध मानते है, जो ठीक ही है ।हाँ, एक बात है, बौद्ध होते हुए भी वह सब धर्मों के प्रति मध्यम भाव रखता था |'अनुयायात्प्रतिपदम सर्वधर्मेषु मध्यमाम ।'दक्षिण भारत में अष्टांगसंग्रह का महत्व अधिक है| उत्तरीय भारत में चरक, सुश्रुत पर जोर दिया जाता है। इस भेद का मुख्य कारण मुझे एक ही लगता है । वाग्भट का ब्राह्मण या वेद्वादी न होना है | इसी कारण उसके वचनों को माधवकार ने लिया परन्तु नाम नहीं दिया | आजकल यदि कोई ऐसा काम करता है, तो उसे चोर कह देते है । नाम न लेना वास्तव में चोरी है दूसरे की वस्तु को अपनी बताकर बताना उत्तम नहीं। बस, इसी कारण से उत्तर भारत में संग्रह का प्रचार नहीं हुआ। बंगाल में भी सेन जाती के लोग ब्राह्मणसम कहे जाते है। ब्राह्मणों में चिकित्सा व्यवसाय रहने से वे लोग ब्राह्मणेतर और विशेषकर दूसरे धर्मावलम्बी नास्तिक की पुस्तक को कैसे आदर देते । आनंद की बात तो यह है की, वाग्भट इसे पीछे समझ गया । इसलिये उसने अष्टांगहृदय में लिख भी दिया, की –'अतोमत्सरमुत्सृज्य माध्यस्थमवलम्ब्यताम' मत्सरता को छोडकर मध्यस्ता (सच्चाई) से काम लो । ये वचन वही कहेगा, जिसकी आत्मा झूठे द्वेष की साक्षी दे रही हो । ग्रंथकर्ता को अपने कार्य पर गर्व था, और ब्राह्मण लोग उसे केवल ब्राह्मणनेतर होने से नहीं स्वीकारते थे । इसीसे उसने ऐसा लिखा । उसने अपने ग्रन्थ में ईश्वर, अव्यक्त, महान, पंचतन्मात्र, अहंकार, किसी भी विषय का नामोल्लेख नहीं किया | उसने तो सुश्रुत के बताये सिद्धांत से ही काम लिया --- 'भुतेभ्यो ही परं यस्मान्नास्ती चिन्ता चिकिस्तिते ।।' चिकित्सा में पंचमहाभूत से आगे जाने की जरुरत नहीं । इसलिये यह एक शुद्ध आयुर्वेद का ग्रन्थ ही है | इसी एक ग्रन्थ के पठन-पाठन से आयुर्वेद के सब विषय स्पष्ट हो जाते है | चरक, सुश्रुत की फिर गुरुमुख से पढ़ने की जरुरत नहीं रहती

। यदि आयुर्वेद विद्यालयों में कॉलेजों में इसी एक ग्रन्थ का सम्पूर्ण ग्रन्थ का पाठन करा दिया जाये, तो समय भी बचे, व्यय भी बचे और चरक, सुश्रुत को पृथक- पृथक पढाने की कोई भी आवश्कता न रहे । क्योंकि इसमें चरक, सुश्रुत का कोई विषय छोड़ा नहीं गया- अपि तू कुछ सिद्धांत उनसे नये इसमें आए है । यह एक संस्करण ही है ।"[31] अष्टांगसंग्रह सूत्रस्थान के प्रथम अध्याय में आचार्य वाग्भट ने तथागत बुद्ध को नमन किया है।"तृष्णादीर्घमसद्वीकल्पशिरसं प्रद्वेषचञ्चत्फणं ।कामक्रोधविषं वितर्कदशनं रागप्रचन्डेक्षणम ।।मोहाख्यं स्वशरीरकोटरशयं चित्तोरगं दारुणं |प्रज्ञामन्त्रबलेन यः शमितवान्बुद्धाय तस्मै नमः।।"[32] अ. सं. सु. अ १|१ तृष्णारूपी लम्बाईवाले ; असदविकल्प रूपी शिर वाले ;द्वेषरूपी चंचल फणवाले ' काम – क्रोध रूपी विषवाले ; वितर्करूपी दांतोंवाले ; रागरूपी प्रचण्ड आखोंवाले ; मोहरूपी मुखवाले ; अपने शरीर की खोह में रहनेवाले चित्तरूपी भयानक साप को , प्रज्ञारूपी मन्त्र के बल से जिसने शान्त कर दिया , उस तथागत गौतम बुद्ध के लिए नमस्कार है। इसी सन्दर्भ में वैद्य यदुनन्दन उपाध्याय ने अष्टांगहृदय के प्रस्तावना में कहा है, "अष्टांगहृदय ग्रन्थ के रचयिता आचार्य वाग्भट ईसवी सन चौथी शताब्दी के मध्य या अन्त में वर्तमान थे । देश में विशेषतः दक्षिण में यह प्रसिद्ध हैकि अमरकोशाकार अमरसिंह का ही दूसरा नाम वाग्भट था । वे जाति के ब्राह्मण थे , बाद में उन्होंने बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया था । कुछ लोगों का कथन हैकि बौद्ध धर्म का खंडन बिना उसके पूर्ण अध्ययन के सम्भव न देखकर उन्होंने बौद्ध भिक्षु अवलोकित का शिष्यत्व स्वीकार किया । बौद्ध धर्म की बहुत – सी बातें उन्हीं जँची, जिससे वे वैदिक धर्म के नियमादिकों के साथ बौद्ध धर्म के भी उपयोगी आचारादि का सेवन करने लगे । इस पर तत्कालीन ने उन्हें बौद्ध ही कहना प्रारम्भ कर दिया ।बुद्ध में भी वे श्रद्धा रखते थे । आखिर बुद्धावतार भी तो वैदिकमत सम्मत है। या यों कहिये कि बौद्धमत भी वैदिकधर्म का एकांगीयांश है।उसका विरोध इस वास्ते होता हैकि वैदिक धर्मोक्त एकांशमात्र को सत्य मान शेषांश की बौद्ध धर्म में उपेक्षा की गई है।अष्टांगसंग्रह में 'बुद्धाय तस्मै नमः ' स्पष्ट है। कुछ लोग यहाँ 'बुद्ध' शब्द का अर्थ ज्ञानी करते है, पर मेरा मत हैकि आचार्य ने स्पष्ट बुद्ध (गौतम बुद्ध) को ही प्रणाम किया हैऔर वे बुद्ध के प्रति श्रद्धा रखते थे , क्योंकि वे उस युग के महापुरुष थे इसमें सन्देह नहीं । बौद्ध धर्म के विपरीत श्रीवाग्भटाचार्य ने अनेक स्थलों पर मांसभक्षण का उपदेश किया है। चैत्य (बौद्धमन्दिर) गमन का निषेध सदाचार प्रकरण में सुस्पष्ट शब्दों में किया है। शस्त्रकर्म बौद्धमत विरुद्ध है। स्वयं बुद्ध ने शस्त्रकर्म करनेवाले को थुल्लाख्य दण्ड देने का आदेश दिया हैपर वाग्भट ने शस्त्रकर्म का सविधान और सविस्तर वर्णन किया है।"[33]

वैद्य यदुनन्दन उपाध्याय के उपरोक्त वक्तव्य के सन्दर्भ में यहाँ कुछ तथ्य दिए हैं, जो बौद्ध धर्म के प्रभाव के बारें जानकारी देते हैं, जैसे-- "नष्ट होता हुआ बौद्ध धर्म, हिन्दू धर्म पर भी गहरा प्रभाव डाले बिना न रहा । हिंदुओं ने बुद्ध को भी विष्णु का नवाँ अवतार मानकर बौद्ध जनता का ध्यान अपने ओर आकर्षित कर लिया ।दोनों धर्मो में इतनी समानता बढ़ गयी की बौद्ध और हिन्दू दंतकथाओं में भेद करना कठिन हों गया । अत्यंत प्राचीनकाल से ईश्वर पर विश्वास रखती हुई आर्य जाति का चिरकाल तक अनीश्वरवाद को मानना बहुत कठिन था । इसी तरह बौद्धों का वेदों पर अविश्वास हिंदुओं को बहुत खटकता था । कुमारिल तथा अन्य ब्राह्मणों ने बौद्धों के इन दोनों सिद्धांतों

का जोरों से खंडन आरम्भ किया । उनका यह आन्दोलन बहुत प्रबल था और इसका परिणाम भी बहुत व्यापक हुआ । कुमारिल के बाद ही शंकराचार्य के आ जाने से इस आन्दोलन ने और भी जोर पकड़ा । शंकरदिग्विजय में कुमारिल के द्वारा शंकर को निम्नलिखित श्लोक कहलाया गयाहै।–

भुत्यर्थधर्मविमुखान सुगतान निहन्तु ,जातं गुहं भुवि भवं तमहं नु जाने ।

अर्थात वेदार्थ से विमुख बौद्धों को नष्ट करने के लिये आप गुह (कार्तिकेय) रूप से उत्पन्न हुए हैऐसे मैं मानता हूँ ।"[34] स्वातंत्र्यवीर वि. दा. सावरकर ने कहा था, "प्रख्यात मीमांसक और वैदिक कर्मकाण्ड के कट्टर समर्थक कुमारिल भट्ट ने बौद्ध सिद्धान्तों को पराजित करने के लिये,उन्होंने पहले बौद्ध सिद्धान्तों का बौद्ध धर्म के ग्रन्थों(त्रिपिटकों) से अध्ययन किया, बौद्धों जैसा आचरण किया और बाद में बौद्ध सिद्धान्तों के विरुद्ध सिद्धान्तों की रचना कर अपने जीवन को कृतार्थ, ध्येयपूर्ति पाकर, उन्होंने अपने आप को तुषाग्निमें भस्म किया था, आत्मदाह कर लिया था । क्योंकि, उनके मतानुसार बौद्ध सिद्धान्तों को पराजित करने के लिये उनको पाखण्डी बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन और बौद्ध तरीके से आचरण करना पड़ा था, इसलिए प्रायश्चित्त स्वरूप उन्होंने आत्मदाह किया था ।"[35] स्वामी विवेकानन्द ने अपने मित्र श्री प्रमदा दास को लिखित दिनांक 17.08.1889 के पत्र में उनसे प्रश्न पूछे थे ---

1. "यदि 'जगदव्यापारवर्ज प्रकरणादसंनिहितत्वाच्च' इस सूत्र के अनुसार किसीको पूर्ण ईश्वरत्व प्राप्त नहीं होता, तो निर्वाण का वास्तव में क्या अर्थ है?
2. वेदान्त – सूत्रों में वेदों के प्रमाण के विषय में कोई कारण क्यों नहीं दिये गये ? पहले तो यह कहा गया हैकि, वेद परमात्मा के अस्तित्व के प्रमाण हैऔर फिर यह बताया गया हैकि वेद 'परमात्मा से निःश्वसित है' इसलिए प्रमाण है। अब यह बताइए कि पश्चिमी तर्कशास्त्र के अनुसार यह कथन एक अन्योन्याश्रय दोष के समान दोषपूर्ण हैया नहीं ?
3. जिस परमात्मा ने वेदों का निर्माण किया, उसी ने फिर बुद्धावतार धारण कर उनका खंडन किया । इन धर्मोपदेशों में किसका अनुगमन किया जाय ? इनमें से किसको प्रमाणस्वरूप माना जाय ? पहले को या बाद वाले को ? "[36]

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था,"हम जिसे आधुनिक पण्डितों का अद्वैत दर्शन कहते है, उसमें बौद्धों के भी अनेक सिद्धान्त मिले हुए है। अवश्य ही, हिन्दू –अर्थात सनातनी हिन्दू – इस बात को स्वीकार नहीं करेंगे, क्योंकि उनके विचार में बौद्ध नास्तिक है । परन्तु वेदान्त दर्शन को जान – बूझकर ऐसा

व्यापक रूप देने की चेष्टा की गयी है कि उसमें नास्तिकों के लिये भी स्थान रहे ।"[37] " क्या हिंदूधर्म, क्या ईसाइयत, क्या इस्लाम, क्या जापान के ताओ और शिन्रोधर्म सभी किसी न किसी मात्रा में बौद्ध धर्म से प्रभावित है ।"[38]

यह कितना गलत दुष्प्रचार हुआ है कि जैसे-- वैद्य यदुनन्दन उपाध्याय ने कहा हैं, "शस्त्रकर्म बौद्धमत विरुद्ध है। स्वयं बुद्ध ने शस्त्रकर्म करनेवाले को थुल्लाख्य दण्ड देने का आदेश दिया है।" क्या यह बुद्ध की मानवतावादी शिक्षा के सही अर्थ को अनर्थ में बदलने की कोशिश तो नहीं है? क्या बुद्ध की शिक्षा को जानबूझकर नीचा दिखाने की कोशिश तो नहीं हो रही है?जब कि सच्चाई तो यह है कि तथागत बुद्ध ने स्वयं शस्त्रकर्म करने की अनुमति दी थी जब "एक भिक्षु को फोड़े का रोग था, तो भगवान बुद्ध ने शस्त्रकर्म करने के लिए कहा, और आयुष्मान भिक्षु पिलिन्दवच्छ को पर्ववात (गठिया) का रोग था, भगवान बुद्ध ने शृंग से रक्तमोक्षण करने के लिए कहा।"[39] और 'बुद्ध ने शस्त्रकर्म करनेवाले को थुल्लाख्य दण्ड देने का आदेश दिया हैं', यह बिलकुल असत्य कथन वैद्य यदुनन्दन उपाध्याय ने किया हैं, उन्होंने अर्थ को अनर्थ में बदलने का कर्म किया हैं, बल्कि सच्चाई तो यह हैकि, "गुप्त स्थान में शस्त्रकर्म का निषेध करते हुए, जब एक भिक्षु को भंगदर का रोग था, तब तथागत बुद्ध ने कहा गुह्य स्थान में चारों ओर दो अंगुल तक शस्त्रकर्म या बस्तिकर्म नहीं करना चाहिए, उस स्थान में त्वचा कोमल होती है और घाव मुश्किल से भरता है, शस्त्र चलाना कठिन है और जो इस जगह शस्त्रकर्म करेगा उसे थुल्लाख्य दण्ड देने का आदेश दिया है।"[40] यह सत्य विनयपिटक (बौद्ध त्रिपिटक में से एक) के महावग्ग में भैषज्यस्कन्ध अध्याय में पालिभाषा (बुद्ध के समय की जनभाषा) में वर्णित है,जैसे "तेन खो पन समयेन अञ्ञतरस्स भिक्खुनो गण्डाबाधो होति |भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं | अनुजानामि,भिक्खवे, सत्थकम्मन्ति ।"[41] (एक भिक्षु को फोड़े का रोग था, भगवान बुद्ध ने शस्त्रकर्म करने के लिए कहा |"तेन खो पन समयेन आयस्मतो पिलिन्दवच्छस्स पब्बवातो होति । भगवतो एतमत्थं आरोचेसुं । अनुजानामि, भिक्खवे, लोहितं मोचेतुन्ति । लोहितं मोचेत्वा विसाणेन गाहेतुन्ति ।"[42] (आयुष्यमान भिक्षु पिलिन्दवच्छ को पर्ववात का रोग था, भगवान बुद्ध ने शृंग से रक्तमोक्षण करने के लिए कहा) पालिभाषा के सन्दर्भ में कहा जाता हैं, ""पालि साहित्य में बौद्ध संस्कृति के मूलतत्व संगुन्फित है। बोधि के प्राप्ति से लेकर महापरिनिर्वाण तक बुद्ध ने लौकिक प्राणियों के कल्याण हेतु जो उपदेश दिये, उनसे ही बौद्ध संस्कृति का स्वरूप ग्रंथन हुआ है।'प्रेयस' की अपेक्षा निःश्रेयस को अधिक महत्व देने के कारण बुद्ध वचनों ने भारतीय संस्कृति की इहलौकिक परम्परा को झकझोर दिया, श्रमण संस्कृति ने ब्राह्मण संस्कृति को पर्याच्छन्न् कर लिया और हमारे जातीय संस्कारों की धारा शताब्दियों तक आमुष्मीकता की भूमियों पर प्रवाहित होती रही । पालि साहित्य में इन भूमियों का महत्वपूर्ण पर्याकलन उपलब्ध है।"[43] "पालि निश्चित ही तत्कालीन जनभाषा थी और बुद्ध ने अपने उपदेशों को लोक – ग्राह्य बनाने एक लिये उसी का माध्यम अपनाया । मूल बौद्ध साहित्य पालि भाषा में ही प्रणित हुआ है।"[44] "जहाँ एक ओर यह कथन सही हैकी पालि में बौद्ध वाङमय ही बौद्ध वाङमय हैं, वहाँ यह कथन सत्य नहीं की सारा बौद्ध

वाङ्मय पालि में ही है। बौद्ध वाङ्मय पालि मे तो है ही, प्रचुर मात्र में संस्कृत में भी है और नाम लेने भर के लिये कुछ प्राकृत अथवा अर्धमागधी में भी जैसे "धम्मपद"। किन्तु वह आसानी से उपलब्ध ही नहीं।"[45] "बुद्ध ने सारे उपदेश अपनी मातृभाषा में दिये जो की उन दिनों " कोशली " कहलाती थी । यह उन दिनों के कोशल देश की प्राकृत भाषा थी ।इसमें छान्दस अथवा संस्कृत की कृत्रिमता नहीं थी । बुद्ध की समस्त वाणी को इस प्राकृत भाषा ने सदियों तक पालकर, संभालकर रखा, अतः यह 'पालि' कहलायी । कालांतर में कोशल सहित सारे उत्तर भारत पर मगध सम्राट अशोक का प्रभुत्व हों गया और उसने बुद्ध की शिक्षा के साथ साथ उनकी भाषा भी अपनायी । तब से यह भाषा 'मागधी' कहलाने लगी।"[46] "पालि भाषा ने न केवल हमारी आधुनिक भारतीय भाषाओं को ही प्रभावित किया है, उसका प्रभाव सिंहल, ब्रह्मदेश, स्यामदेश की भाषाओं के विकास पर भी पर्याप्त रूप से पड़ा है। इतिहास के दृष्टि से भी पालि साहित्य का प्रभुत महत्व है। उसके सम्यक अध्ययन से हम बौद्ध कालीन इतिहास और भौगोलिक तथ्यों का बहुत अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकते है। धर्म और दर्शन के दृष्टि से भी पालि का अधिक महत्व है। हमने अभी तक प्रायः संस्कृत ग्रंथों से ही बौद्ध धर्म और दर्शन का परिचय प्राप्त किया है। जो कुछ हालातों में एकांगदर्शी और अधिकांशतः उसके मौलिक स्वरूप से बहुत दूर है। इस प्रकार बुद्ध धर्म के मौलिक स्वरूप से हम प्रायः अनभिज्ञ ही रहे हैं।"[47]

श्री लक्ष्मीशंकर गुरु ने अष्टांगहृदय के द्वितीय संस्करण पर दो शब्द कहते हुए कहा हैं, "आजकल इन विगत १० वर्षों में विद्वत – समुदाय में एक प्रवृत्ति हो गई हैकि वे आयुर्वेद की उपलब्धियों को, सिद्धान्तों को , आधुनिक ज्ञान से अनावश्यक रूप से तुलना करते है| नव्य चिकित्साज्ञान नित्य परिवर्तनशील , वर्धनशील है। उस ज्ञान में अन्तिम सत्य नहीं प्राप्त हुआ हैअतः उससे तुलना कर अपने शाश्वत सिद्धान्तों को नित्य प्रतिदिन भ्रष्ट करना ही कहा जायेगा । हमें अपने सिद्धान्तों की , अपने शब्दों की , सत्यता शाश्वत सत्ता को सिद्ध करना चाहिये, उसके लिए केवल आंग्ल भाषा के शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिये क्योंकि इससे भयंकर भूले होती है(उदाहरणीय त्रिदोष सिद्धांत के वात, पित्त और कफ को (AIR, BILE, PHELGM कहना)

प्रजातन्त्रात्मक भारत में आयुर्वेद प्रेमियों , विद्वानों एवं विद्यार्थियों का परम कर्तव्य हैकी वे तन – मन धन से

१. आयुर्वेद के मूल सिद्धांतों का अन्वेषण , पुनः स्थापन करें
२. देश में उत्पन्न होनेवाली औषधियों के गुण धर्मों का अनुसन्धान कर उन्हें भारतीय ढंग से प्रयोग करने पर अन्वेषण करें ।
३. आयुर्वेद के इतिहास में अन्वेषण करें ।
४. आयुर्वेद के लुप्त ग्रंथों का खोज एवं प्रकाशन करें ।
५. आधुनिक वर्गीकरण के अनुसार नाना ग्रंथों से विषयानुसार संकलन करें और
६. निदान एवं चिकित्सा सूत्रों , विधियों पर रुग्णालय में अनुसन्धान करें ।"[48]

यह एक ऐतिहासिक सत्य हैकि, "भारतीय चिकित्साशास्त्र की उन्नत अवस्था का सर्व श्रेष्ठ समय वही था, जब बौद्धधर्म अपने शिखर पर था। हो सकता है कि प्राचीन ब्राह्मणों ने शरीरशास्त्र संबधी कुछ आरंभिक ज्ञान उस समय प्राप्त किया हो जब वे यज्ञ- याग के लिए पशुओं कि चीरफाड करते थे। लेकिन चिकित्साशास्त्र का यथार्थ विकास उन सार्वजनीन अस्पतालों में हुआ जिनकी स्थापना सम्राट अशोक ने भारत के हर बड़े नगर में की थी। भगवान बुद्ध का आदेश था कि जो मेरी सेवा करना चाहता है, वह रोगियों कि सेवा करे |प्रसिद्ध चरक संहिता के रचयिता चरक बौद्ध राजा कनिष्क के राज वैद्य थे। नागार्जुन ने आयुर्वेद विज्ञान को नया जीवन प्रदान किया। उसकी प्रतिभा और उसके पांडित्य के फलस्वरूप ही हमें सुश्रुत के परिवर्द्धित संस्करण की प्राप्ति हुई है। सुश्रुत का अगला हिस्सा जो उत्तरतंत्र कहलाता है नागार्जुन के ही स्वतंत्र चिंतन और खोज का परिणाम है। एक सच्चे बौद्ध की परंपरा का अनुकरण करते हुए नागार्जुन ने बिना किसी भेद- भाव के सभी को आयुर्वेद का शिक्षण दिया। आज आयुर्वेद के आरंभिक विद्यार्थियों द्वारा जिस ग्रन्थ का अध्ययन किया जाता है, वह वाग्भट भी एक बौद्ध की ही रचना है | नागार्जुन ने ही अर्क निकालने तथा उन्नयन की पद्धतियों की खोज की और इस प्रकार रसायन शास्त्र को बढ़ावा दिया। दिन्नाग और उनके शिष्य धर्मकीर्ति ने " प्रमाणों" पर लिखे अपने ग्रथों के माध्यम से भारतीय तर्कशास्त्र को नया बल दिया। वररुचि, जयादित्य, वामन और चंद्र ने व्याकरण संबधी ग्रन्थ लिखे | ब्यादी और अमरसिंह ने शब्द कोष तैयार किये। नालंदा के महान विश्वविद्यालय सदृश बौद्ध सभ्यता के केंद्र स्थानों में सभी विज्ञानों तथा कलाओं का अध्ययन होता था।"[49]

इतिहास में "ई.स. 600 से ई.स.1200 तक यह 600 साल का काल दार्शनिक दृष्टि से उन्नति की पराकाष्ठा तक पहुंचा हुआ था। इस समय से पूर्व भारत में दर्शन के छह प्रसिद्ध संप्रदायों – न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा और उत्तर मीमांसा (वेदान्त) का पूर्ण विकास हों चूका था। ई.स. 600 से पूर्व तक छहों संप्रदायों के मुख्य मुख्य सूत्र ग्रंथों का निर्माण हों चूका था और उन पर प्रामाणिक तथा उपयोगी भाष्य भी लिखे जा चुके थे।"[50] बौद्ध धर्म के बारें में पण्डित राहुल सांकृत्यायन ने कहा हैं, "भारतीय विचार धाराओं में जिसने काफी समय तक नई गवेषणाओं को जारी रहने दिया, वह यही धारा थी। नागार्जुन , असंग , वसुबंधु , दिङ्नाग ,धर्मकीर्ति –भारत के अप्रतिम दार्शनिक इसी धारा में पैदा हुए थे। उन्हीं के उच्छिष्ट – भोजी पीछे के प्रायः सारे ही दूसरे भारतीय दार्शनिक दिखलाई पड़ते है।"[51]

निष्कर्ष :

प्रस्तुत विषय दीर्घ अनुसन्धान का है, जो इस तरह से संक्षिप्त में वर्णन करना बहुत कठिन कार्य है| जो भी तथ्य इस संक्षिप्त विश्लेषण से उजागर हुए हैं, वे यही दर्शाते है कि बौद्ध दर्शन का आयुर्वेद पर गहरा प्रभाव है और अपने पड़ोस के देशों (म्यानमार, श्रीलंका, तिब्बत, भूटान, तैवान, जापान, इंडोनेशिया, नेपाल) में जो बौद्ध साहित्य उपलब्ध हैं, अगर वह सभी साहित्य अपने भारत देश में लाया जाए और उसपर अनुसन्धान किया जाए तो सत्य सामने आ जाएगा और वह सत्य हो

सकता है जैसे डॉ. म. एस.वलिथान ने कहा है, "Spread of Ayurveda all over India, after all it was Buddhist texts." इसलिए यह नितान्त आवश्यक होता है कि आयुर्वेद का अध्ययन एवं अनुसन्धान ऐतिहासिक, पुरातत्वीय, भाषाएँ, दार्शनिक, धार्मिक एवं अध्यात्मिक दृष्टियों से होना चाहिए।

सन्दर्भ :

1. मनोहरलाल शास्त्री,(2013), संस्कृत वाङ्मय में समाज एवं राष्ट्र, राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर ,पृष्ठ 14.
2. डॉ.ब्रह्मानंद त्रिपाठी,(2013),चरकसंहिता भाग1,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी,पृष्ठ 3.
3. वही, पृष्ठ 6.
4. प्रो. हरेन्द्रप्रसाद सिन्हा, (२०१२),भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृष्ठ 1.
5. डॉ.ब्रह्मानंद त्रिपाठी,(2013),चरकसंहिता भाग1,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी,पृष्ठ 3.
6. राहुल सांकृत्यायन, (1947),दर्शन – दिग्दर्शन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 419-420.
7. रामशरण शर्मा (२०१५), प्रारंभिक भारत का परिचय, ओरिएंट ब्लैकस्वाँन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृष्ठ 26-27.
8. राहुल सांकृत्यायन, (1947),दर्शन – दिग्दर्शन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 428.
9. Joshi,L.,M.,(2008),Brahmanism, Buddhism, and Hinduism, An Essay on their Origins and Interactions, Buddhist publication society, Sri Lanka, pp. 14-15.
10. कविराज डॉ.अम्बिकादत्तशास्त्री, (2013), सुश्रुतसंहिता पूर्वार्ध, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पृष्ठ 3
11. राहुल सांकृत्यायन, (1947),दर्शन – दिग्दर्शन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 651--654.

12. डॉ.ब्रह्मानंद त्रिपाठी,(2013),चरकसंहिता भाग1,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी,पृष्ठ 8.
13. वैद्य यदुनन्दन उपाध्याय, (2009), अष्टांगहृदयम, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ 8-9.
14. डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन,(2007),31 दिन में आवश्यक पालि, पृष्ठ 2.
15. आचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्का, (2012) "क्या बुद्ध नास्तिक थे?" विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, पृष्ठ 11.
16. राहुल सांकृत्यायन, (1947),दर्शन – दिग्दर्शन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 12-13 & 15.
17. डॉ.ब्रह्मानंद त्रिपाठी,(2013),चरकसंहिता भाग1,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी,पृष्ठ 15.
18. महावीर सांगलीकर, (2011), संस्कृत भाषेचे गौड़बंगाल, जिजाई प्रकाशन, पुणे, पृष्ठ 27.
19. वही, पृष्ठ 11.
20. वही, पृष्ठ 32.
21. वही, पृष्ठ 32.
22. वही, पृष्ठ 41.
23. वही, पृष्ठ 41.
24. वही, पृष्ठ 6.
25. डॉ.ब्रह्मानंद त्रिपाठी,(2013),चरकसंहिता भाग1,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी,पृष्ठ 8.
26. राहुल सांकृत्यायन, (1947),दर्शन – दिग्दर्शन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 601-602.
27. Dr. Talim, M.,(2009), Science of Medicine and Surgery in Buddhist India,Buddhist World Press, New Delhi,pp.76
28. कविराज डॉ.अम्बिकादत्तशास्त्री, (2013), सुश्रुतसंहिता पूर्वार्ध, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पृष्ठ 11-15.
29. आचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्का,(2012), "क्या बुद्ध नास्तिक थे?" विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, पृष्ठ 195.

30. http://textofvideo.nptel.iitm.ac.in/121106003/lec2.pdf
31. कविराज अत्रिदेव गुप्त,(2005)श्रीमदवाग्भटविरचित अष्टांगसंग्रह, कृष्णदास आयुर्वेद सीरीज़ ३१, पृष्ठ 11-12.
32. कविराज अत्रिदेव गुप्त,(2005), अष्टांगसंग्रह भाग १, पृष्ठ 1
33. वैद्य यदुनन्दन उपाध्याय, (2009), अष्टांगहृदयम, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ 11-12.
34. रायबहादुर महामहोपाध्याय आदि, (1928), मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, Central Archeological Library, Deptt.of Archeology, Govt.of India,call no.901.0954, पृष्ठ 33.
35. www.loksatta.com, (Marathi news paper), dated 13.03.2011, पृष्ठ 32.
36. स्वामी विवेकानन्द साहित्य,(2009), अद्वैत आश्रम, बेलूर मठ, कोलकाता,खंड 1,पृष्ठ 341-343.
37. वही,खंड 9,पृष्ठ 170.
38. पी. लक्ष्मी नरसु,(1948) दि इसैन्स ऑफ् बुद्धिझम्(बौद्ध धर्म का सार), हिन्दी अनुवाद, डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन,तीसरा संस्करण, प्रकाशक, मुंशीलाल गौतम अध्यक्ष सिद्धार्थ गौतम शिक्षण व संस्कृति समिति, धन्सारी, जि.अलीगढ, उत्तरप्रदेश,पृष्ठ 17.
39. www.tipitak.org, vinaypitak, mahavagga, page 181
40. वही, पृष्ठ 181
41. वही, पृष्ठ 181
42. वही, पृष्ठ 181
43. कु. मुकुलरानी त्रिपाठी,(1977), पालि पल्लवनी,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी,पृष्ठ1
44. वही,पृष्ठ1
45. डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन,(2007),31 दिन में आवश्यक पालि,पृष्ठ1.
46. आचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्का, (2012), "क्या बुद्ध दुःखवादी थे?" विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, पृष्ठ 12.
47. भरतसिंह उपाध्याय,(2008),पालि साहित्य का इतिहास,Central Archeological Library, Deptt.of Archeology, Govt.of India,Acc.No.8684,call no.891.3709,पृष्ठ 72-73.

48. लक्ष्मीशंकर गुरु,(2009), अष्टांगह्रदयम, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ 17.
49. पी. लक्ष्मी नरसु,(1948) दि इसैन्स ऑफ् बुद्धिझम्(बौद्ध धर्म का सार), हिन्दी अनुवाद, डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन,तीसरा संस्करण, प्रकाशक, मुंशीलाल गौतम अध्यक्ष सिद्धार्थ गौतम शिक्षण व संस्कृति समिति, धन्सारी, जि.अलीगढ, उत्तरप्रदेश,पृष्ठ 59-60.
50. रायबहादुर महामहोपाध्याय,आदि(1928),मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, Central Archeological Library, Deptt.of Archeology, Govt.of India,call no.901.0954,पृष्ठ 87-88.
51. राहुल सांकृत्यायन, (1947),दर्शन – दिग्दर्शन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 539.